संवादात्मक प्रक्रिया में वाद्यों का महत्त्व

DR. KAMINI SHANDIL
Assistant Professor, J.L.N. Govt. College of Fine Art, Shimla

सार संक्षेपिका

मानवीय प्रयासों एवं कला के विकास का कोई अन्त नहीं होता। इसीलिए संगीत और उसकी संवादात्मक प्रयोजनीयता एवं अन्त नहीं होता। संगीत और उसकी संवादात्मक प्रयोजनीयता एवं प्रभावोत्पादकता से सम्बद्ध उद्देश्य, उपलब्धियों एवं आकांक्षाओं का भी कोई अन्त नहीं है। पूर्व कालों में किए गए प्रबुद्ध चिन्तन से जो कुछ इतिहास के पृष्ठों में उपलब्ध है वही आज के संगीत समाज के लिए दिशा निर्देशक एवं पथ–प्रदर्शक बनकर, आधुनिक संगीत कलाकारोंएवं संगीत चिन्तकों के लिए वैचारिक मन्थन की सामग्री बना है और इसी मन्थन पर आधारित क्रियात्मक प्रयोगों की संवादात्मकता भविष्य में संगीत और समाज के उच्च आदर्शों की ओर अधिक सूक्ष्म एवं प्रभावी बनाने में विशिष्ट भूमिका निभाती है।

बीज शब्द

संवादात्मक प्रक्रिया, वाद्यों का महत्त्व

भूमिका

हमारा देश भारत, अध्यात्म प्रधान देश रहा है। भारतीय संस्कृति की आत्मा आध्यात्मिक स्वर एवं धार्मिक अभिव्यंजना से अनुप्राणित रही है। आध्यात्मिक विकास भारतीय जीवन का लक्ष्य सहस्त्राब्दियों से रहा है। भारतीय संस्कृति का अध्यात्म केवल एक ही व्यक्ति की गवेषण–चेष्टा नहीं, वरन् विश्व में व्याप्त सामूहिक समष्टिगत आत्मा की खोज है।

भारतीय संगीत अति प्राचीन काल से अपनी वैदिक एवं कलात्मक उत्कृष्टताओं के कारण जिज्ञासा एवं रूचि का विषय रहा है। संगीत भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग होने के कारण वह अपनी आध्यात्मिकता, सहजता एवं भाव–प्रवणता से समय–समय पर सभी को आकर्षित करता रहा है। भारतीय संगीत की सर्वोपरि विशेषता उसकी मौलिक सृजन की क्षमता में है। परम्परा अथवा सम्प्रदाय को अक्षुण्ण रखते हुए वादन में मौलिकता की अभिव्यक्ति भारतीय संगीत की विशेषता है। राग की अभिव्यक्ति में गायक अथवा वादक का व्यक्तित्व सर्वोपरि है और उसी का प्रस्फुटन राग को सप्राण बनाने के लिए श्रेयस्कर माना जाता है।

संगीत का आधार कल्पना है और ये भी सही ही है कि कल्पनाओं की कोई सीमा नहीं होती। वास्तव में संगीत, संगीतज्ञ की कल्पना है। संगीतज्ञ अपनी कल्पना द्वारा ही नवीन रागों की, नवीन तालों की, वाद्यों की तथा नवीन गायन शैली की रचना करता है। प्रत्येक मनुष्य की कल्पना के अनुसार ही भिन्न–भिन्न नवीन चीज़ों का जन्म होता है। यदि आधुनिक समय तक प्रचलित और अप्रचलित सभी वाद्यों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि वे असंख्य है तथा प्राचीन वाद्यों का क्रमिक विकास ही आधुनिक बाज का जन्म दाता है।

विभिन्न प्राकृतिक गतिविधियों की भान्ति संवादात्मकता भी प्राणी मात्र की एक अनिवार्य गतिविधि है और इस गतिविधि की परिपूर्णता के लिए वह जिन माध्यमों का अनेकानेक रूपों, परिमाणों एवं उद्देश्यों को लेकर प्रयोग करता है, उन्हीं में से उत्कृष्ट, सूक्ष्म, ललित एवं अत्यन्त संवेगात्मक तथा मानवीय संवेगों में अभिन्न माध्यम है संगीत। व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में भिन्न–भिन्न आदर्शों, कल्पनात्मक एवं कलात्मक अभिव्यक्तियों, नैतिकतापूर्ण अभिव्यंजनाओं आदि के सन्दर्भ में निहित सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से संगीत की ध्वन्यात्मकता, मानवीय संवाद की परिचायक रही है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त नाद से उद्भूत संगीत ने अपने विशिष्ट तकनीकी प्रयोगों को संजोकर अपने ललित्य, माध्युर्य, रंजकतत्व, भावत्व एवं रसत्व से युक्त स्वरूप से न केवल लौकिक संवादात्मक प्रयोजन को बल्कि पारलौकिक स्वर पर परासंवादात्मक रूप में प्रयोज्य बनकर मानव के लिए आत्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संवाद का मूल तात्पर्य एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के मध्य अथवा अनेक व्यक्तियों के मध्य होने वाले भावों के आदान–प्रदान से है। यह वृत्ति मानव की जन्मजात प्रतिभाओं एवं अर्जित कला–कौशल से मन और मस्तिष्क द्वारा अनुभूति और अभिव्यक्ति के रूप में स्थूल, सूक्ष्म एवं अति सूक्ष्म स्तर पर होने वाली भावात्मक ग्राह्यता से सम्बन्ध रखती है और इस प्रकार सूचनाओं व विचारों के सथानान्तर में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वाद्यों की यह प्रतीकात्मकता ही नाटक के प्रदर्शन में अथवा स्वतन्त्र वाद्य वादन प्रस्तुति में संवादात्मकता एवं रसात्मकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि मंच प्रदर्शन में यह विशिष्ट ध्वनियां ही विशिष्ट अवसरों का प्रतीक बनकर विशेषतः सम्बन्धित भावों को दर्शकों, श्रोताओं में जागृत कर देती है।

वाद्यों में महत्त्व का अत्यन्त ही विशिष्ट पक्ष है। उनके माध्यम से किए जाने वाले संगीतात्मक अनुसंधान। ये अनुसंधान वाद्यों से अब तक परम्परावादी अथवा वैज्ञानिक रूप से स्वरों की उत्पत्ति, स्वर स्थान, स्वरान्तरालों, ग्राम, मूर्च्छना, जातियों सम्बन्धित परीक्षणों का माध्यम भिन्न–भिन्न वाद्य ही रहे हैं। देखा जाए तो संगीतपयोगी नाद की तीन विशेषताओं– तारता, तीव्रता तथा जाति का गुण आदि का विस्तार ही संगीत वाद्यों का विस्तार क्षेत्र कहा जा सकता है, जिनकों अधिक से अधिक सूक्ष्म एवं सौन्दर्यात्मक रूप में प्रस्तुत किए गए परीक्षण ही समय–समय पर नवीन वाद्यों के जन्म का कारण बने हैं। सम्भवतः वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से पाश्चात्य देखों में अधिक सम्भावनाएं होने के कारण वाद्य सम्बन्धी परीक्षण विदेशों में अधिक हुए है और शायद इसीलिए पाश्चात्य संस्कृति में गायन की अपेक्षा वाद्य वादन या वृन्द वादन के रूप में हार्मनी युक्त संगीत का क्षेत्र अधिक विस्तृत है जबकि भारत में मैलॉडी प्रधान संगीत का।

संवेगात्मकता या संवादात्मकता के सन्दर्भ में वाद्यों की अन्य विशेषता है। किन्हीं विशिष्ट प्राकृतिक प्रभावों अथवा किसी प्रसंग को नाटक या नृत्य के माध्यम से दर्शाते हुए कथावस्तु में निहित प्रसंगों की भाव प्रवणता में वृद्धि करना। उदाहरणस्वरूप सितार पर अलग–अलग क्रमिक रूप से बजाए गए कुछ स्वर धीमी बूंदा–बांदी का आभास देने में समर्थ होते हैं तो तीव्र गति से बजाए गए स्वर विशिष्ट राग में सुसज्जित होकर वर्षा के होने का आभास देने में सक्षम सिद्ध हो सकते हैं।

तात्विक रूप से वाद्य कला के दो पहलुओं भावपक्ष व कलापक्ष को परिपुष्ट करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मध्यकाल के उपरान्त स्वतन्त्र वादन के रूप में संगीत के भावपक्ष की अपेक्षा कला पक्ष प्रबल होता चला गया और रागों, तालों, स्वर सन्निवेशों, बन्दिशों, लयकारियों, द्रुततालों तथा आलाप आदि में वैचित्र्य चमत्कार तथा संगीतात्मक लालित्य को अधिक महत्त्व मिलने लगा। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो आज भी ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकारों का व्यक्तिगत प्रदर्शन अधिकतर कलापक्ष से प्रभावित रहता है। जबकि वृन्दवादन, नृत्य नाटिकाओं, चलचित्रों में प्रयुक्त वादन, पार्श्व संगीत तथा चित्रपट संगीत में प्रयुक्त वाद्य वादन में भाव–पक्ष की प्रधानता रहती है।

बीते समय में जो स्थान नाट्यकला का रहा है, वही स्थान वर्तमान में फिल्मों में ग्रहण किया अुआ है। यदि चित्रपट संगीत से वाद्य पृथक कर दिया जाए तो वह नीरस हो जाएगा। पार्श्व संगीत मूक दृश्यों और घटनाओं के भावात्मक विचारों को दर्शाता है। चित्रपट संगीत में वाद्यवृन्द की रचना भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। वाद्यवृन्द का प्रयोग मूक दृश्यों को भी प्रभावी बनाकर उसमें निहित भावों का स्पष्टीकरण करता है।

फिल्में में मूल युग में भी भावना के विकास एवं प्रभाव के लिए वाद्यों के द्वारा बाह्य संगीत दिया जाता था। वर्तमान में तो संगीत चल चित्र की आत्मा ही बन गया है। अनेक वाद्यों से सजी धुनें और परिस्थिति के अनुसार उनका प्रयोग सुनने वालों को अनायास ही आकर्षित कर लेते हैं।

प्रत्येक हृदय के साथ वाद्यों की समयोजित धुनें मानव रूचि को परिष्कृत करती है। संगीत कथानक को प्रवाह प्रदान करता है, यही कारण है कि फिल्म के प्रभावपूर्ण प्रदर्शन के लिए संगीत आवश्यक हो गया है। संगीत निर्देशन फिल्म की कथा के मूल भावों का अध्ययन करके उसी की बांछनीयता के अनुरूप ही उपयुक्त संगीत की निर्मित करने का प्रबन्ध करता है। अनुकूल गीतों को वह कथा की भावानानुसार वाद्यवृन्द द्वारा सुमधुर ध्वनि देता है। अतः सिद्ध हो जाता है कि वाद्यों की अपनी प्रतीकात्मक एंव संगीतात्मक महत्ता होती है। किसी विशेष भावाना या रस का संचार करने में अन्य विकल्प की आवश्यकता नहीं होती। यहां तक कि भाव या रस की संवादात्मक प्रक्रिया में वाद्य, गायन और नृत्य को प्रोत्साहित करने में भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

संवादात्मक प्रक्रिया में संगीत वाद्यों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संभवतः वाद्यों की विविधता और महत्त्वपूर्ण प्रयोजनीयता को दृष्टिगत रखते हुए ही उन्हें अनुशासित, व्यवस्थिति एवं सैद्धान्तिक संरक्षण प्रदान करने की दृष्टि से ही विद्वानों ने उन्हें वर्गीकृत करने की आवश्यकता का अनुभव किया।

संवाद सृष्टि एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अतः संगीत की संवादात्मकता से अपेक्षित लक्ष्य, उद्देश्य एवं उपलब्धियाँ भी असंख्य एवं अगण्य है। जिस प्रकार सृष्टि के समस्त तत्त्वों के अन्तर्गत ग्रहों, उपग्रहों, समय व ऋतु आदि के बीच तालमेल होने से अथवा बीच एक विशिष्ट संवाद होने से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की गतिशीलता का सन्तुलन बना रहता है। उसी प्रकार संगीतात्मक तत्त्वों की गतिमानवता मानवीय स्नायुतन्त्र के माध्यम से मन मस्तिष्क पर होने वाले प्रभावों, अनुभूति एवं अभिव्यक्ति क्षमता के बीच प्रस्थापित तालमेल एवं सन्तुलित सौन्दर्यात्मक प्रक्रिया से ही असत्य भाव–आध्यात्मिक, मनोविज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना आदि के स्तर पर प्रभावोत्पादक सिद्ध होते है।

संगीत की संवादात्मक प्रयोजनीयता को सिद्ध करने एवं उसको अधिक प्रभावोत्पादक बना पाने में शैक्षणिक दृष्टि से शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में घराना परम्परा तथा संगीत के शैक्षणिक संस्थानों का योगदान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि संगीत तथा उससे फलीभूत होने वाली संवादात्मकता का विवेचन और विश्लेषण करते हुए आने वाली पीढ़ियों में उसके प्रति रूचि एवं योग्यता प्रत्यारोपित करके विद्यार्थियों व शिक्षार्थियों को समाज की एक स्वस्थ इकाई बनाकर उन्हें आने वाले युग के लिए तैयार करना शैक्षणिक संस्थाओं का विशेष उत्तरदायित्व है। इस शिक्षण संस्थाओं की सफलता का एक विशेष अंग प्रशासन है और दूसरा अंग सांस्कृतिक सम्पन्नता। इस दृष्टि से प्रशासनिक केन्द्र, सांस्कृतिक संस्थान, एवं घरानों से सम्बन्ध मंच कलाकार तथा भूतपूर्व दरबारों में प्रस्थापित संगीत के कलाकार सभी एक दूसरे के साथ अविछिन्न रूप से जुड़े हुए है।

आधुनिक समय में प्रस्थापित सांगीतिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएं, संगीत अकादमी एवं संयोजनात्मक प्रयोजनों से प्रस्थापित संगीत समूह, सांगीतिक सांस्कृतिक परिषद् आकाशवाणी, दूरदर्शन, ध्वनि मुद्रण सामग्री की सहायता से कार्य करने वाली सांगीतिक ईकाईयां आदि सभी के समन्वित प्रयास ही संगीत की संवादात्मकता व लोकप्रियता के सशक्त उदाहरण है।

उपसंहार

मानवीय प्रयासों एवं कला के विकास का कोई अन्त नहीं होता। इसीलिए संगीत और उसकी संवादात्मक प्रयोजनीयता एवं अन्त नहीं होता। इसीलिए संगीत और उसकी संवादात्मक प्रयोजनीयता एवं प्रभावोत्पादकता से सम्बद्ध उद्देश्य, उपलब्धियों एवं आकांक्षाओं का भी कोई अन्त नहीं है। पूर्व कालों में किए गए प्रबुद्ध चिन्तन से जो कुछ इतिहास के पृष्ठों में उपलब्ध है वही

आज के संगीत समाज के लिए दिशानिर्देशक एवं पथ–प्रदर्शक बनकर अधुनाकालीन संगीत कलाकारों एवं संगीत चिन्तकों के लिए वैचारिक मन्थन की सामग्री बना है और इसी मन्थन पर आधारित क्रियात्मक प्रयोगों की संवादात्मकता भविष्य में संगीत और समाज के उच्च आदर्शों की ओर अधिक सूक्ष्म एवं प्रभावी बनाने में विशिष्ट भूमिका निभाती है।

संदर्भ

भटनागर रजनी (2006) सितार की वादन की शैलियां, कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।

सुदीप, राय वी.एस. (2004), जहान ए सितार, कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।

शर्मा योगिता (2008) हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के तंत्री वादियों में परिवर्तन एवं प्रवृतियां, कनिष्का पब्लिशर्स नई दिल्ली।

शर्मा अमल दास (2011) विश्व संगीत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली।

Pratibha Spandan